

निराला और छायावाद

डॉ. आर.पी. वर्मा,

असि. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
इन्दिरा गॉंधी राजकीय महिलामहाविद्यालय,
रायबरेली, उ.प्र.

जीवन का विकास—क्रम जिन युगीन चेतनाओं को लेकर जिस नव्य दिशा में अग्रसर हुआ करता है, साहित्य के रथ का पहिया भी स्वभावतः उधर ही घूम आया करता है। यों तो प्रत्येक काल और युग किन्हीं नव्य एवं प्रगतिशील प्रवृत्तियों को लेकर ही आया करता है। पर आज जिस जीवन के व्यवहार क्षेत्रों और साहित्य में प्रगतिवाद के नाम से अभिनिहित किया जाता है, उसके आयाम नितान्त अपने हैं। अपनी व्याख्या है। सामान्यतः 'प्रगति' शब्द का अर्थ है आगे बढ़ना, अतः प्रगतिवाद उस मार्ग को कहा जा सकता है जिसके द्वारा बढ़ा जाये, प्रगति की जाये; पर हिन्दी-साहित्य में 'प्रगतिवाद' एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त होता है। स्थूलतः प्रगतिवाद वह मार्ग है। जिसके द्वारा कवि काल्पनिक भूमि को छोड़कर यथार्थ भूमि के गीत गाता है। सर्वत्र प्रगतिवाद की चेतना मार्क्सवाद की देन मानी जाती है। हिन्दी को भी प्रगतिवाद की प्रेरणा मार्क्सवाद से ही मिली है। मार्क्सवाद मुख्यतया तीन सिद्धान्तों पर आधारित है।

मार्क्स किसी अलौकिक सत्ता में विश्वास नहीं करता। उसके अनुसार आत्मा, परमात्मा, स्वर्ग, नरक आदि भावनाएं केवल कल्पित हैं। वास्तव में इनका कोई व्यक्तित्व नहीं है। सृष्टि—उत्पत्ति के विषय में उसका सिद्धान्त यह है कि इसकी उत्पत्ति एवं विकास भौतिक शक्तियों से ही होता है। दो वस्तुओं एवं शक्ति के संघर्ष से तीसरी वस्तु का जन्म और विकास होता है और यह विकास भौतिक शक्तियों की क्रिया

तथा प्रतिक्रियाओं से ही निरन्तर बढ़ता जाता है। जिस वस्तु में जितनी शक्ति होती है, वह उतना ही अधिक देर तक टिकती है और उसका उतना ही अधिक विकास होता है। ध्यातव्य है कि मार्क्स का यह सिद्धान्त बहुत कुछ भारतीय सांख्य-दर्शन में मेल खाता है। इन दोनों में मुख्य अन्तर व्याख्याओं पर आधारित है। सांख्य अध्यात्मपरक दर्शन है, जबकि मार्क्सवाद भौतिक जीवन-दर्शन है। सूक्ष्म-स्थूल का अन्तर भी है।

इस सिद्धान्त के अन्तर्गत मार्क्स ने चार बातों का विवेचन किया है — मूल पदार्थ, स्थूल साधन, श्रमिक का श्रम और मूल्य-वृद्धि, मूल पदार्थ और स्थूल साधन के अन्तर्गत वे साधन आते हैं जो उत्पादन में सहायक होते हैं, जैसे मशीन आदि। इन्हीं के सहयोग से श्रमिक अपने श्रम के द्वारा उत्पादन करता है जिसका लाभ पूंजीपति को पहुंचता है। इसलिए मार्क्स ने समाज को दो भागों में विभाजित किया है — शोषक वर्ग और शोषित वर्ग। शोषक वर्ग पूंजीपतियों का है और शोषित वर्ग श्रमिकों का। पूंजीपति श्रमिकों के श्रम से हुए लाभ को स्वयं बटोर लेता है और श्रमिक को उसके भाग्य पर भूखा मरने के लिए छोड़ देता है। इसका परिणाम वह होता है कि पूंजीपति दिन प्रतिदिन धनाढ्य होता चला आता है और श्रमिक दिन-प्रतिदिन भुखमरी और दरिद्रता की ओर चलता जाता है। जब पूंजीपति वर्ग शोषण जारी रखने के लिए पूर्व जन्म के कर्मों का फल, नियति, भाग्य और भगवान, धर्म, पाप-पुण्य जैसे शास्त्रों का प्रयोग करता है। अपने

अन्ध विश्वास के कारण शोषित वर्ग जीवन भर इन शास्त्रों की मार खाकर भी जीता-मरता रहता है। अतः मार्क्स मानता है कि जब तक समाज की इन दो गहरी खाइयों को समाप्त नहीं कर दिया जाता, शोषक और शोषित का भेद-भाव नहीं दिया जाता, तब तक कोई भी समाज न तो उन्नति कर सकता है और न उसकी सामाजिक अर्थ-व्यवस्था में सन्तुलन आ सकता है। अपने लाभ का अंश और बढ़ाने के लिए पूँजीपति अपने उत्पादन में मूल्य-वृद्धि कर देता है। मार्क्स का यह अटूट विश्वास होता है कि जब तक समाज की अर्थ-व्यवस्था सन्तुलित न होगी, उत्पादन का और उनके द्वारा प्राप्त किए हुए धन का ठीक-ठीक बंटवारा नहीं होगा, तब तक समाज में विकास नहीं आ सकता। यह सिद्धान्त द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की वास्तव में व्यवहारिक व्याख्या करने वाला है।

मार्क्स समाज को जातिगत आधार पर विभाजित करना उचित नहीं समझता। उसने आर्थिक दृष्टिकोण समाज के विभाजन का मुख्य आधार माना है और इसी आधार से उसने समाज को दो वर्गों में विभाजित किया है—

शोषक वर्ग के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं, जो बिना श्रम किए हुए दूसरों के श्रम का लाभ उठाकर धनार्जन करते हैं। शोषित वर्ग के अन्तर्गत वे व्यक्ति आते हैं, जिन्हें अपने श्रम का उचित मूल्य नहीं मिलता। इसी दृष्टि से मार्क्स ने विश्व-सभ्यता का अध्ययन किया है और उसे चार भागों में विभाजित किया है जबकि आदिम अवस्था को उसने अवैज्ञानिक साम्यवादी व्यवस्था का युग ही कहा है। उसका विभाजन इस प्रकार है !

इस वर्गीकरण से यह स्पष्ट है कि मार्क्स साम्यवादी व्यवस्था को ही समाज के लिए आदिम भी मानता है और अन्तिम श्रेयस्कर भी मानते हैं। साम्यवाद का मूल सिद्धान्त यह है कि समाज की आर्थिक व्यवस्था का संतुलन बनाए रखने के लिए सभी को उनका उचित धनांश मिलना चाहिए।

जिस समाज में श्रम करने वाला श्रमिक भूखा मरता है और श्रम न करने वाला पूँजीपति दिन-प्रतिदिन मोटा और धनाढ्य होता जाता है, वह समाज मनुष्यों के रहने के योग्य नहीं रह जाता। वह भी इसी लोक का नरक है जिसमें परिश्रमी व्यक्ति भयंकर यात-नाएँ भोगते हैं।

भाग्य अथवा प्रारब्ध पर विश्वास करने से दो बातें उत्पन्न होती हैं— पहली तो यह कि पूँजीपति इसके आवरण में अपनी शोषक प्रवृत्ति को छिपाने में सफल होते हैं। वे श्रमिकों के मन में यह धारणा भर देते हैं कि धन का श्रम से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह तो भाग्य का खेल है। जिसके भाग्य में धन लिखा है, वही सदैव धनी रहेगा और जिसके भाग्य में भूखा मरना लिखा है, वह रात-दिन हड्डी-तोड़ परिश्रम करने के बाद भी भूखा ही सोयेगा। दूसरी यह कि इससे श्रमिकों के मन में अनूचित सन्तोष की भावना जागृत होती है। वे यह सोचने पर विवश हो जाते हैं कि उसके भाग्य में भर-पेट रोटी जब लिखी ही नहीं तो वे धनवान कैसे बन सकते हैं। इसमें श्रमिकों में तो अपने कार्यों के प्रति उदासीनता उत्पन्न होती है और पूँजीपति को अपने श्रमिकों से विरोध का कोई भय नहीं रहता। इसलिए साम्यवाद में भाग्य की सत्ता को पूर्णतया अस्वीकार किया गया है। अतः साम्यवाद सम्पत्ति के राष्ट्रीयकरण पर बल देता है—

‘व्यक्ति समाज का अंग है और समाज के लिए उसकी सत्ता है। जब तक वह समस्त समाज के विकास और वृद्धि में उपयोगी है, तब तक उसका उतना ही मूल्य है जितना किसी अन्य व्यक्ति का। अतएव सम्पत्ति का विभाजन व्यक्तिपरक न होकर व्यक्ति को सामाजिक उपयोगिता के आधार पर होना चाहिए तथा किसी व्यक्ति का मूल्य इतना अधिक नहीं होना चाहिए कि उसके चुकाने में दूसरे व्यक्ति को कष्ट हो। इस मूल्य-नियन्त्रण के लिए सम्पत्ति पर से व्यक्ति का नियन्त्रण हटा कर समाज का

नियन्त्रण आवश्यक है। साम्यवादी व्यवस्था का यही मूल तत्व है।'

यही साम्यवाद साहित्यिक रूप लेकर हिन्दी साहित्य में उतरा और प्रगतिवाद के नाम से विख्यात हुआ। इसके तत्व निम्नलिखित हैं –

निराला स्वभावतः ही क्रांतिकारी कवि थे, अतः रूढ़ियों की ओर परम्पराओं का अन्यायपूर्ण करना इनकी प्रवृत्ति के प्रतिकूल था। अपने रूढ़ि विरोधी स्वभाव के कारण इन्होंने हिन्दी साहित्य में अनेक नवीन परम्पराओं को जन्म दिया। मुक्त छंद का प्रयोग इन परम्पराओं में सर्व प्रमुख है। निराला ने ही सबसे पहले यह घोषित किया है कि छन्द कविता के बन्धन हैं और इनसे कविता को मुक्त करना उसे नवीन शक्ति और प्राणवत्ता प्रदान करना है। उन्हीं के शब्दों में –

“मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्मों के बंधनों से छुटकारा पाना है और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग होना। मुक्त छन्द में बाह्य समता के प्रति कविता का जो अतुल आग्रह होता है, वह समाप्त हो जाता है, केवल मुक्त छन्द में आन्तरिक साम्य होता है, जो उसके प्रवाह में सुरक्षित रहता है उच्चारण से मुक्ति की जो अबाध धारा प्राणों को दुःख प्रवाहासिक्त करती है, वही इसकी प्रमाण है।”

इसमें अतिरिक्त निराला ने हिन्दी कविता में अनेक प्रयोग किये हैं। इन्होंने उर्दू-छन्दो का, विशेषतः गजल का, हिन्दी में बहुत ही सबलता में प्रयोग किया है। भाषा में नवीन चेतना और शक्ति जाने के लिए इन्होंने अनेक अंग्रेजी अलंकारों को अपनाया है। छायावादी पर्यावरण में पलने वाली कोमल-काल शान्त भाषा को ओजस्विता स्फूर्ति एवं भास्वरता प्रदान की है।

सामाजिक क्षेत्र में भी निराला रूढ़ियों का विरोध करने वाले थे। वास्तविकता तो यह है कि इनका समूचा जीवन ही रूढ़ियों का विरोध करते

करते बीता। 'सरोज-स्मृति' नामक शोकगीत में अपनी पुत्री के सौन्दर्य का वर्णन करना साहित्य और समाज की रूढ़ियों का सबसे प्रबल विरोध है।

शोषित और दुखी जन ही प्रगतिवादी कवि के प्रतिपाद्य होते हैं और इनकी यथार्थता का चित्रण करना उसके काव्य का प्रयोजन होता है। अपने व्यावहारिक जीवन में निरालाजी को अनेक प्रकार के शोषणों का सामना करना पड़ा था। अतः शोषितों के प्रति अगाध सहानुभूति से उनका भर उठना स्वाभाविक ही था। उदाहरण के लिए निराला की भिक्षुक के प्रति यह सहानुभूति देखिये—

वह आता—

दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।

पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,

चल लहा लकुटिया टंक

मुट्ठी भर दाने को-भूख मिटाने को

मुंह फटी-पुरानी झोली को फैलाता—

दो टूक कलेजे के करता पछताता, पथ पर
आता।

साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाये,

बांये से वे मलते हुए पेट को चलते,

और दाहिना दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाये।

भूख से सूख औठ जब जाते,

दाता-भाग्य विधाता से क्या पाते ?

घूंट आंसुओं के पीकर रह जाते।

चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।”

इन पंक्तियों में यथार्थ और रोमांचकारी चित्रण के साथ-साथ भिक्षुक के प्रति कवि की अगाध सहानुभूति भी मुखरित है। ऐसा वर्णन वही कवि

कर सकता है, जिसने अपनी मन की आंखों से किसी भिक्षक को निर्मिष दृष्टि से घंटो देखा हो। यहां छन्द तूक हीनता पर भी तरल-लय और ज्ञेयता का समन्वित्व दर्शाया है। एक मजदूरनी का चित्रण और देखिए—

‘वह तोड़ती पत्थर,
देखा मैंने इलाहाबाद के पथ पर—
वह तोड़ती पत्थर।
नहीं छायादार
पेड़ वट जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन भर बंधा यौवन,
तन नयन, प्रिय-कर्म-रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार बार प्रहार—
सामने तरु-मालिका अट्टालिका, आकार।
चढ़ रही थी धूप
गर्मियों के दिन,
दिग का तमतमाता रूप
उठी झुलझाती हुई लू
रुई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगी छा गई,
प्रायः हुई दुपहर—
वह तोड़ती पत्थर।

कितना यथार्थ और मर्मन्तक चित्रण है उस मजदूरनी का जो रुई के समान भू को जलाने वाली लूओं में भी अपने काम में बराबर लगी हुई है। यह उसकी विवशता है। आखिर उसे रोटी मिलेगी भी कैसे, यदि वह काम न करेगी लुओं से डरकर किसी छायादार वृक्ष का आश्रय लेगी। इस कविता में जो अपरा गेयता अप्रतिहत भाव है वह विश्व की किसी अन्य कविता में स्थान ही मिलता है। निराला की 'विधवा' सरीखी कविता में भी

यही सूक्ष्मी निरीक्षणी शक्ति एवं शोषितों के प्रति सहज सहानुभूति है।

इन उद्धरणों से यह सिद्ध हो जाता है कि निराला के उदार मन में शोषितों के प्रति कितनी सहानुभूति है।

जब प्रगतिवादी कवि सामाजिक विषमता के कारण समाज में ऐसे भी मनुष्यों को देखता है, जिन्हें जीने के अधिकारों से समाज ने पूर्णतया वंचित कर दिया है, पर फिर भी वे अपने देह-कंकाल को संजोकर जीने का उपक्रम करते हैं तो उसका मन विद्रोह कर उठता है। वह चाहता है कि इस धरा का —जिस पर मानवता की लाश ही नजर आती है— नाश हो जाये। अपनी इसी इच्छा की पूर्ति के लिए वह या तो प्रलयकारी शिव का आवाहन करता है या श्यामा का। निराला श्यामा का आवाहन करते हुए कहते हैं—

‘एक बार बस और नाच तू श्यामा।
सामान सभी तैयार,
कितने ही हैं असुर, चाहिये कितने तुम को हार ?
कर मेखला मुंड मालाओं के बन मन-अभिरामा—
एक बार बस और नाच तू श्यामा !

इस प्रकार की क्रान्तदर्शिता निराला की अन्य अनेक कवितों में भी उपलब्ध होती है। उनका मन मानवीय शोषणों को निहार विद्रोही हो उठता है। तब वे कविता के माध्यम से कस-कर ज्वलन्त व्यंग बाण छोड़ने लगते हैं।

सामाजिक विषमताओं को देखकर कवि का मन खिन्न हो जाता है। उसके मन में वेदना और निराशा के भाव भर जाते हैं। वे भाव कभी तो व्यक्तिपरक होते हैं और कभी समाजपरक, अर्थात् कभी तो कवि अपनी ही वेदना और निराशा से दुखी होता है और कभी समाज की वेदना और निराशा उसके दुख का कारण बनती

है। निराला में व्यक्तिपरक वेदना और निराशा का भी पर्याप्त चित्रण मिलता है। यथा—

‘मैं अकेला,
देखता हूँ आ रही
मेरे दिवस की सान्ध्य बेला।’
पके आधे बाल मेरे
हुए निष्प्रभ गाल मेरे
चाल मेरी मन्द होती आ रही
हट रहा मेला।

और कभी कवि को इसलिए वेदना और निराशा होती है कि उसका स्नेह निर्झर समाप्त हो गया है—

‘स्नेह—निर्झर बह गया है
रेत ज्यों तन रह गया है।
आम ही यह डाल जो सूखी दिखी
कह रही है—अब यहां पिक या शिखी
नहीं आते, पक्ति मे वह हूँ लिखी
नहीं जिसका अर्थ—
जीवन रह गया है।’

प्रगतिवादी कवि की यह धारणा होती है कि समाज के सारे अनर्थों का मूल अर्थ—व्यवस्था की विषमता है। जब तक यह विषमता दूर नहीं होगी, समाज में सुख और शांति किसी प्रकार भी नहीं आ सकती। इन विषमताओं को समाप्त करने का एकमात्र हल साम्यवाद है। अतः वह न चाहते हुए भी कभी—कभी विषमताओं के पारस्परिक और समता का विधायक मानकर साम्यवाद का गुण—गान करने लगता है। ‘बनवेला’ नामक कविता में साम्यवाद की प्रशंसा करते हुए निराला जी कहते हैं—

फिर पिता संग
जनता की सेवा का व्रत मैं लेता उमंग,

करता प्रचार मंच पर खड़ा हो साम्यवाद इतना
उदार।

अन्य विषयों की भांति परम्परा से शोषित मानी जानने वाली नारी—चित्रण में भी प्रगतिवादी कवि यथार्थवादी रहे हैं। इसके शरीर—सौन्दर्य पर भी यद्यपि इन कवियों का ध्यान गया है, पर सबसे अधिक ध्यान इसकी उन परिस्थितियों की ओर गया है जिसने इसे बांधकर निष्ठुर समाज के अधिकार हीन बना रखा है। निराला का ध्यान उस विधवा की ओर गया है जिसका सारा सुख समाज ने छीनकर उसे अनाथ असहाय और तिरस्कृत बनाया हुआ है। कितना मर्मन्तक यह वर्णन—

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा—सी
वह दीपशिखा—सी शान्त, भाव में लीन
वह क्रूर—काल—ताण्डव की स्मृति—रेखा—सी
वह टूटे तरु की छटी—लता—सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है।’

नारी की हीन दशा को वे सामाजिक पतन और पराधीनता का भी एक कारण मानते हैं। उनका विश्वास है कि नारी मुक्ति के बिना, जाति, समाज और राष्ट्र का उद्धार कभी सम्भव नहीं हो सकता। अतः निराला ने ‘विधवा’ तथा कुछ अन्य कविताओं में नारी को सभी दृष्टियों से बन्धन—मुक्त करने का प्रबल समर्थन किया है।

प्रगतिवादी कवि वस्तुतः क्रान्तिकारी होता है। क्रांति की दो दिशाएं होती हैं—ध्वंस और नव—निर्माण। प्रगतिवादी इन दोनों ही दिशाओं को अपनाता है। जब वह ध्वंस की भेरी बजाता है तो शिव और श्यामा का आवाहन करता है जब वह नवनिर्माण की इच्छा करता है तो समाज को उद्बोधन की गीत सुनाता है। निराला में ये दोनों प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। ध्वंस के लिए वे श्याम का

आवाहन करते हैं और नवनिर्माण के लिए समाज का उद्बोधन—

‘पशु नहीं, वीर तुम, समर—शूर क्रूर नहीं,
काल—चक्र में हो दबे आज तुम राजकुंवर
समर सरताज!’

तुम हो महान तुम सदा हो महान
है नश्वर यह दीन भाव, कायरता कामपरता
ब्रह्म हो तुम, पदरज भर भी हैं नहीं
पूरा यह विश्वभार, जागो फिर एक बार !’

इस प्रकार हम देखते हैं कि निराला में वे सभी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, जो एक प्रगतिवादी के लिए अपेक्षित है। युग चेतना और पर्यावरण में प्रगतिवादी गीत गाकर निराला ने महत्वपूर्ण कार्य किया। निराला का प्रगतिवादी की स्थापना में और उसमें प्राणवत्ता भरने में जो योगदान हिन्दी—साहित्य को मिला है, वह अविस्मरणीय एवं गौरवमय है। वास्तव में प्रगतिवाद और नई कविता में प्रस्तोता निराला जैसे प्रखर व्यक्तियों को ही स्वीकार करना चाहिए यह युग मूलतः उन्हीं के पद चिन्हों पर चल रहा है।

संदर्भ

1. कवि निराला—नंद दुलारे वाजपेई, पृ. 111
2. महाप्राणि निराला—गंगा प्रसाद पाण्डेय, पृ. 123
3. निराला—राम विलास शर्मा, पृ0 19
4. छायावाद शब्द और संवेदना—डॉ. मंजूरानी सिंह, पृ. 84
5. छायावाद का सौंदर्यशास्त्रीय अध्ययन—कृष्णविमल, पृ. 18
6. निराला: आत्महंता आस्था—दूधनाथ सिंह, पृ. 32
7. निराला साहित्य प्रतिरोध स्वर—विवेक निराला, पृ. 142
8. निराला की साहित्य साधना— भाग 1, भाग 2, भाग 3, राम विलास शर्मा, पृ. 52, 91, 142

Copyright © 2016 Dr. R.P Verma. This is an open access refereed article distributed under the Creative Common Attribution License which permits unrestricted use, distribution and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited.